समकालीन हिन्दी कहानियों में पारिस्थितिकी का स्वरूप

पारिस्थितिकी समस्त जीवों के अस्तित्व का आधार है। पृथ्वी के हर जीव-जंतु अपनी पारिस्थितिकी से प्रभावित होने के साथ ही साथ, वे परस्पर आश्रित भी है। प्रकृति के पेड-पौधे, पशु-पक्षी, पहाड़ आदि यही आंतरिक एकता और परावलंबन की शिक्षा ही देते हैं, जिसके अनुरूप एक संस्कृति ही मानव का रहा है। सभी धर्मों का मर्म भी प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध को प्रश्रय देनेवाला है। भारतीय संस्कृति में विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार करने वाला 'वसुधैव कुडुम्बकम्' का सिद्धांत इसका प्रमाण है। प्रकृति के साथ मानव का यह आत्मीय संबंध उसके सृजनात्मक साहित्य एवं कलाओं में भी स्पष्ट प्रतिफलित रहा है।

वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक विकास, औद्योगीकरण आदि की वजह से सामाजिक जीवन में आये बदलाव मानव और प्रकृति के इस जैविक रिशते में दरारें उत्पन्न करने लगीं। राष्ट्र की प्रगति का प्रतीक बने विज्ञान और उद्योग के विकास से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से विश्व का स्वरूप ही बदल गया और अखिल सृष्टि पर प्रभृत्व करने की मानसीकता से उपजे वैश्विक स्पर्धा, उपभोगवादी संस्कृति आदि के नकारात्मक प्रभाव पारिस्थितिकी पर पड़ने लगे। वैसे भूमंडलीकरण, बाज़ारीकरण, उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय साम्राज्यवादी नीतियों आदि से गुज़र रहे वर्तमान समाज केलिए विकास केवल वैज्ञानिक प्रौद्योगिक उन्नति और अर्थ व्यवस्था पर सीमित रह गया है। तथाकथित विकास की अंधी दौड़ में मानव इस वास्तविकता से विस्मृत होने लगा कि प्रकृति भी एक जीवंत शक्ति है और भौतिक और आर्थिक तृष्णा से युक्त प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण

दोहन पारिस्थितिक संकट के रास्ता खोलेगा। प्रकृति एवं उसके अन्य चराचरों के अस्तित्व को नज़र अंदाज़ करते हुए, सिर्फ अपनी प्रगति के प्रति चिंतित मानव के ऐसे विकासोन्मुख हस्तक्षेप से पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ रहा है। इसके परिणाम स्वरूप उभरे मौसम परिवर्तन, वैश्विक तपन जैसी पारिस्थितिक समस्याओं ने आज दुनियाभर पारिस्थितिक संकट की भीषण स्थिति पैदा की है।

इसप्रकार वर्तमान युग में वैश्विक स्तर पर व्याप्त पारिस्थितिक संकट सबके समक्ष एक गौरवमय विषय बन गया है जो इक्कीसवीं सदी की प्रमुख चिंताओं में एक है। पारिस्थितिक चिंतन और अध्ययन का इस सामयिक महत्व ही, इसे अपने शोध विषय के रूप में स्वीकार करने को प्रेरित किया है। सबके अस्तित्व से जुड़े विषय होने के नाते पारिस्थितिक अध्ययन और उसके प्रचार हर समय प्रासंगिक है।

युगीन पारिस्थितियों से सीधा सरोकार रखनेवाले मानव के सृजनात्मक साहित्य में इस पारिस्थितिक या हरितदर्शन के प्रभाव सहज द्रष्टव्य है। उन सजग साहित्यकारों के विचारों में प्रकृति प्रेम, प्रकृति के सौन्दर्य वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि उनमें समकालीन पारिस्थितिक समस्याओं के प्रति जनता को सचेत बनानेवाले पारिस्थितिक अवबोध विद्यमान है। साहित्य की हर विधा वर्तमान पारिस्थितिक यथार्थ का गहरा साक्षात्कार कराती है। हिन्दी कहानी साहित्य का भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान है। पारिस्थितिक अध्ययन की प्रासंगिकता को पहचानकर समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य में इसकी सार्थक अभिव्यक्ति को परखने का प्रयास इस शोध-प्रबंध में किया गया है।

'समकालीन हिन्दी कहानियों में पारिस्थितिकी का स्वरूप' शीर्षक प्रस्तुत शोध प्रबंध को छः अध्यायों में विभाजित किया है। पहला अध्याय है- 'पारिस्थितिक विमर्श का

सौन्दर्यशास्त्र'। इस अध्याय में पारिस्थितिकी से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। प्रारंभ में प्रकृति, पारिस्थितिकी और पर्यावरण के स्पष्ट अंतर को रेखांकित किया है। इसके बाद सांस्कृतिक और वैज्ञानिक तौर पर प्रकृति और मानव के अटूट संबंध को सिद्ध करके पारिस्थितिकी के अस्तित्व से जुड़े पारिस्थितिक संतुलन तथा पारिस्थितिक तंत्र पर भी विचार किया गया है। गहरे अध्ययन के रूप में प्रकृति से वर्तमान मानव के परिवर्तित संबंध के मूल कारणों और उससे उत्पन्न पारिस्थितिक संकट की समस्याओं तथा उसकी भीषण स्थिति को विश्लेषित किया है। तदुपरान्त पारिस्थितिकवाद और पारिस्थितिक दर्शन जो प्रकृति के साथ पारस्परिक और सृजनात्मक संबंध को बढ़ावा देकर मानवराशि को जागृत करने का सार्थक प्रयास है, उनकी सचेतन विचारधाराओं की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है। पारिस्थितिक चेतना से युक्त नयी साहित्यिक धारा के आधार पर विकसित पारिस्थितिक विमर्श एवं पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र से संबधित विचारों को भी इस अध्याय में समेटा गया है।

उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि पारिस्थितिक चिंतन मनुष्य सहित समस्त जीवों के अस्तित्व एवं भविष्य से संबंधित विचार है। वर्तमान पारिस्थितिक संकट वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक विकास, औद्योगीकरण, शहरीकरण, भूमंडलीकरण, उपभोगवादी-संस्कृति, बढती जनसंख्या आदि का संयुक्त परिणाम है। मानव के भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में आये परिवर्तन पारिस्थितिकी के प्रति उनकी मानसीकता में भी बदलाव डाले हैं। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव एक हद तक हमारे परंपरागत सामाजिक जीवन व्यवस्था के स्थान पर नयी व्यवस्था को जन्म दिया है। इनकी वजह से पारिस्थितिकी के साथ मानव के पारिस्थितिक संबंध में एक द्वैतवादी दृष्टिकोण पैदा हुआ है। इस संदर्भ में वर्तमान मानव को इस वास्तविकता से अवगत होना बेहद ज़रूरी है कि

पारिस्थितिकी के जैविक घटक रूपी मानव का अस्तित्व उसके साथ पारस्परिकता और सहवर्तिता से संभव है और पारिस्थितिकी को खतरे में डालकर होनेवाली विकास योजनाओं से उत्पन्न पारिस्थितिक असंतुलन की क्षतिपूर्ति किसी भी नये तकनीकों के विकास से संभव नहीं होगा। इसप्रकार पारिस्थितिक चिंतन वर्तमान वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक एवं औद्योगिक विकास की नीतियों के पुनः विचार केलिए प्रेरित करता है। इसमें मनुष्य केंद्रित से जैवकेंद्रित समाज की स्थापना और सबके अस्तित्व, जीवन एवं आंतरिक मूल्यों को मान्यता देनेवाले समग्र विकास की भावना निहित है।

'पूर्ववर्ति रचनाओं में पारिस्थितिक सजगता' इस शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय है। मानव की सृजनात्मक कलायें प्रकृति से प्रभावित है। प्रकृति और साहित्य का संबंध भी गहरा है। कहा जाता है कि आदिकवि वात्मीकी को प्रकृति के प्रांगण से ही काव्यप्रेरणा मिली है। साहित्य में वैदिककाल से ही प्रकृति अपनी रमणीय सौंदर्य के साथ उपस्थित है। आदिकालीन साहित्यकारों ने अपनी रचना को मनमोहक एवं संप्रेषणीय बनाने केलिए प्राकृतिक दृश्यों को आलंबन और उद्दीपन के रूप में चित्रित किया गया है। छायावादी युगीन रचनाकारों के लिए प्रकृति स्वच्छ प्रेम, अनंत सौंदर्य और उन्मुक्त वातावरण का प्रतीक है। वे अपने चारों ओर के संकीर्ण वातावरण से मुक्त होकर प्रकृति के स्वच्छंद दुनिया में विचरण करते थे। प्रकृति की मानवीकरण की प्रवृत्ति इसका द्योतक है। आम-आदमी के जीवन संघर्ष को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करनेवाले प्रेमचंद युग के साहित्य में भी प्रकृति का सहज चित्रण देखा जा सकता है। प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों में अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी की रचनाओं में प्रकृति मानव मन की सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा।

संवेदना एवं अनुभूति के स्तर पर अलग पहचान रखनेवाली नई कहानी में प्रकृति वैचारिक यथार्थ का वाहक है। साठोत्तर कहानियों के शिल्पपक्ष में प्रचुर मात्रा में विद्यमान बिंब और प्रतीक ज्यादातर प्रकृति से लिया गया है। समकालीन कहानी तक आते उनमें समसामयिक अर्थबोध उजागर होने लगे जिसमें वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, पारिस्थितिक यथार्थ का स्पष्ट प्रतिफलन द्रष्टव्य है। द्वितीय अध्याय में इनका विश्लेषण किया गया है और इस निष्कर्ष पर पहूँचा जा सकता है कि बदली हुई परिस्थितियाँ, भूमंडलीकरण, आदिवासी-दलित जीवन एवं उनकी समस्यायें, वर्तमान पारिस्थितिक संकट आदि की यथावत् आभिव्यक्ति से समकालीन कहानी अपने नाम को सार्थक बनाया है। संक्षेप में समसामयिक संदर्भ में कहानी ऐसी सशक्त विधा है जो सहजता से तत्कालीन समय की भावात्मक और वैचारिक यथार्थ को उद्घाटित करती है। इसका स्पष्ट प्रमाण है समकालीन कहानी में मुखरित भूमंडलीकरण, पारिस्थितिक नारीवाद, आदिवासी जीवन आदि से संबंधित विचार, जिनका गहरा अध्ययन अगले अध्यायों में किया गया है।

'समकालीन हिन्दी कहानी में पारिस्थितिकी का स्वरूप-भूमंडलीकरण के संदर्भ में'— यह इस शोध प्रबंध के तीसरे अध्याय का शीर्षक है। पारिस्थितिक चिंतन में भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति एक गौरवमय चुनौती बन गयी है। यह भूमंडलीकरण पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का ही सुधरा हुआ रूप है, जिसके ज़रिए पूरे विश्व को एक गाँव का रूप देने की बात तो कह रही है, लेकिन इन कुत्सित नीतियों के पीछे विकसित राष्ट्रों की पूँजी बटोरने की मानसीकता है। बाज़ारीकरण, उदारीकरण, निजीकरण जैसे भूमंडलीकरण की आर्थिक-व्यापारिक नीतियाँ जीवन के हर क्षेत्र में अपना नींव डाला है। भूमंडलीकरण

की ऐसी विकासोन्मुख प्रक्रियायें पारिस्थितिकी और आम आदमी पर छोड़नेवाला प्रभाव गहरा है।

पारिस्थितिक दृष्टि से विचार करे तो, यह साफ ज़ाहिर है कि तीसरी दुनिया के अविकसित देशों के प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार स्थापित कर उससे लाभ उठाने की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कुत्सित अभियान को यह अवधारणा पूरा समर्थन देता है। अन्न,जल, वनस्पतियाँ, धरती, बीज जिन पर मानवराशि का समान अधिकार है, उन पर स्वामित्य या अधिकार स्थापित करके भूमंडलीकरण की नीतियाँ हमें एक नव उपनिवेशवादी संस्कृति की ओर ले जा रही हैं। यह एक साथ सांस्कृतिक और पारिस्थितिक संकट पैदा करती है। समकालीन हिन्दी कहानी में सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक आदि सभी क्षेत्रों पर भूमंडलीकरण के इन प्रभावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है। जितेन्द्र भाटिया, कैलाश बनवासी, स्वयंप्रकाश, संजीव, उदयप्रकाश, मृदुला गर्ग आदि रचनाकारों की कहानियों में वर्तमान भूमंडलीकरण की 'खाओ, पिओ, मौज उडाओ' की उपभोगी मानसीकता तथा बाज़ारवाद के प्रसार से पारिस्थितिक संबंध में आये बदलाव का खुला चित्रण मिलता है। ये कहानियाँ बाज़ारवाद, उपभोगवादी संस्कृति, औद्योगिक विकास, विकास योजनाएँ, भूमंडलीकरण के फलस्वरूप बदले परिवेश आदि से संबंधित बहुआयामी यथार्थ को उजागर करती हैं। इस प्रकार तीसरे अध्याय में भूमंचलीकरण की विविध पहलुओं के आधार पर समकालीन हिन्दी कहानी में पारिस्थितिक यथार्थ को आँकने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का चौथा अध्याय है 'समकालीन हिन्दी कहानी में पारिस्थितिक नारीवाद'। पारिस्थितिक नारीवाद (इको फेमिनिज़म्)पारिस्थितिक वाद और नारीवाद का

संयोग है। पारिस्थितिक दर्शन की शाखा होने पर भी यह एक स्वतंत्र आंदोलन के तौर पर विकास प्राप्त कर रहा है। मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्याय पर आधारित यह दर्शन प्रकृति, स्त्री और पुरुष के बीच पारस्परिकता के एक सुदृढ सामाजिक व्यवस्था को रूपायित करने में कार्यरत है। पुरुष द्वारा प्रकृति और स्त्री के शोषण और उत्पीड़न के बीच आलोचनात्मक संबंध दूँढ़कर उपभोगी नज़र के दायरे से उनकी मुक्ति पारिस्थितिक नारीवाद के प्रतिरोधात्मक कार्यों में शामिल है, अर्थात् वे विवेचनहीन ऐसे एक समाज की स्थापना पर ज़ोर देते हैं, जहाँ सबके अस्तित्व का अपना मूल्य है। इस अध्याय में स्त्री और प्रकृति के आपसी संबंध और उनके शोषण एवं उत्पीड़न की विभिन्न पहलुओं को प्रत्यक्ष या परोक्षतया रेखांकित करनेवाली कहानियों को समेटा है और पारिस्थितिक नारीवाद की विचारधाराओं के आधार पर उनका विश्लेषण किया गया है। इससे यह सच्चाई उभर आयी है कि वर्ग, लिंग एवं अर्थ की दृष्टी से पिछड़े हुए लोगों को ही पारिस्थितिक विनाश के दुष्प्रभावों को सामना करना पड़ता है। इसमें स्त्री और आदिवासी ही प्रत्यक्ष प्रभाव भोगते हैं। संजीव, मैत्रेयी पुष्पा, रोज केरकेट्टा, रूपलाल बेदिया, राकेश कुमार सिंह, अश्विनी कुमार पंकज, वासुदेव आदि की कहानियों को इस अध्याय में शामिल किया गया है। पारिस्थितिक नारीवाद के विचारों से युक्त ये कहानियाँ मानवराशी में एकता और पारिस्थितिक संरक्षण की भावना को जाग्रत करती हैं। इस दृष्टि से यह साहित्य के क्षेत्र में एक जागरण है।

पांचवां अध्याय 'समकालीन हिन्दी कहानी में आदिवासी जीवन संदर्भ' है। पारिस्थितिक चिंतन में प्रकृति के साथ घुलमिलकर जीनेवाले आदिवासी जीवन के उल्लेखन का भी विशेष स्थान है। आदिवासी लोग हमेशा हाशियेकृत जीवन जीने को विवश है। वे सभ्य समाज की विकासोन्मुख प्रक्रियाओं से लाभदायक नहीं है। वर्तमान

भूमंडलीकरण के नकारात्मक प्रभावों का सीधा प्रहार आदिवासी जीवन पर, विशेषकर स्त्री पर ही पड़ते हैं। विकास के लिए बनाये जाने वाले बाँधों, कारखानों और खदानों से एक ओर लाखों लोग अपनी ज़मीन से विस्थापित होते हैं तो दूसरी ओर उनसे उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं को भी उन्हें भुगतना पड़ता है। प्रस्तुत अध्याय में प्रकृति से आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक जीवन व्यवस्था, विस्थापन जैसे जीवन की भीषण समस्याओं एवं उनके कारणों पर विचार किया गया है। इनके आधार पर साहित्यिक अभिव्यक्तियों का विश्लेषण किया है। रोज़केरकेट्टा, कमल, वासुदेव, अश्विनी कुमार पंकज, रूपलाल बेदिया, पीटर पॉल एक्का, ज्योति लकड़ा आदि लेखकों की कहानियों में दृष्टिगत आदिवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं से युक्त संघर्षमय जीवन की गहरी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति उनके जीवन यथार्थ का दस्तावेज़ है। पारिस्थितिकी पर सभ्य समाज के विकासोन्मुख हस्तक्षेप जिससे आदिवासियों के जीवन में उत्पन्न समस्यायें, जीवन यापन से लेकर विस्थापन तक की दुरितपूर्ण स्थिति आदि संपूर्ण यथार्थता के साथ आदिवासी कहानियों में उभर आये हैं। इन कहानियों के विश्लेषण से यह सिद्ध हुआ है कि आदिवासी साहित्य हाशिये में रहने को विवश जनसमुदाय की चेतना के विकास का प्रमण है।

'भाषा एवं शिल्पगत अध्ययन' इस शोध प्रबंध का छठा अध्याय है। साहित्य एक सृजनात्मक अभिव्यक्ति है, भाषा उस सृजन का माध्यम है अर्थात् साहित्य एक भाषिक संरचना है, इसलिए साहित्य का अध्ययन, उसमें अभिव्यक्त भावों और विचारों का ही नहीं, उसकी भाषा का भी अध्ययन है। समकालीन कहानी की भाषा शैली और शिल्पगत विशेषतायें अत्यंत विचारणीय है जो सहज, स्वाभाविक एवं बोध गम्य है। इसमें अलंकरण की भाषा नहीं, बल्कि जीवन के अधिक निकट की भाषा का प्रयोग किया है। यह कथ्य

और परिवेश के अनुरूप है और संप्रेषणीयता की दृष्टि से सफल भी है। इस अध्याय में साहित्यकार के भावों और विचारों के आधार पर पारिस्थितिकी की पृष्टभूमि में उनके कथ्य एवं शैली पक्ष को परखने का प्रयास किया गया है। इससे यह साफ व्यक्त होता है कि इसमें दृष्टिगत प्रकृति से जुड़े बिंब, प्रतीक एवं लाक्षणिक प्रयोग वर्तमान मानव के मानसिक, सामाजिक तथा पारिस्थितिक यथार्थ को साकार बनाने में सक्षम है जो गहरे एवं व्यापक अर्थ को समाहित करता है। जैसे जितेन्द्र भाटिया की 'सिद्धार्थ का लौटना' शीर्षक कहानी में भौतिक सुख सुविधाओं के बीच में भी अकेलेपन को महसूस करनेवाले आदमी की मानसिक स्थिति को इसप्रकार प्रस्तुत है – 'अब सुविधाओं के रेगिस्तान उनके चारों तरफ बिछा दिया गया था।' ऐसी विडम्बनात्मक भाषा का प्रयोग आदिवासी जीवन के संदर्भ में भी द्रष्टव्य है - रूपलाल बेदिया की 'काली आँच' कहानी में आदिवासियों के दयनीय हालत को उजागर किया है – 'आखिर यह कैसी व्यवस्था है कि जल में मीन व्यासी रहती है।' पारिस्थितिक प्रदूषण की गौरवमय समस्या हरीचरन प्रकाश की 'नाले का तट'में प्राकृतिक बिंबों से मूर्तिवत् हुआ है – 'हवा में धुवाँ उसी तरह से छूट रहा था जैसे कोई नाला नदी में मुक्त होता है।' प्रकृति से जुडी ऐसी भाषाशैली के विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहूँचा है कि छायावादी भाषा से भिन्न, समकालीन कहानी में प्रयुक्त प्रकृति से ग्रहीत बिंब, प्रतीक आदि समसामयिक वास्तवीकताओं को प्रतिबिंबित करती है।

अंत में उपसंहार दिया गया है। इसमें पारिस्थितिक दृष्टि से समकालीन हिन्दी कहानी की रचनाधर्मिता के विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों को समेटा है। भूमंडलीकरण, पारिस्थितिक नारीवाद और आदिवासी जीवन संदर्भ को लेकर पारिस्थितिक अध्ययन करने पर यह ज़ाहिर होता है कि समकालीन कहानियाँ इनसे संबंधित कई विचारणीय मुद्दों को

प्रतीकात्मक एवं प्रभावपूर्ण शैली में प्रस्तुत करती है। सामाजिक और आर्थिक विकास को प्रश्रय देकर हो रहे अनियंत्रित पारिस्थितिक दोहन, प्रकृति और मानव के बदलते संबंध आदि से उत्पन्न पारिस्थितिक असंतुलन, वैशिक तपन, प्राकृतिक विपदायें जैसे कई विचारयुक्त मुद्दे समकालीन कहानी जनता के सामने पेश करती हैं जो हमें याद दिलाते हैं कि मानव जीवन केलिए सामाजिक और भौतिक विकास के साथ पारिस्थितिकी का संतुलित रूप की अनिवार्यता है। वर्तमान उपभोगवादी संस्कृति की पारिस्थितिक समस्याओं को अपनी कहानियों में अभिव्यक्त करके समकालीन साहित्यकार अपने सृजनात्मक कार्य को सार्थक बनाया है। उनकी सार्थकता तब और अधिक उजागर होती है जब सार्वभौमिकता के स्तर पर पारिस्थितिक यथार्थ का बोध हो, जो उन्हें दुनिया भर सदा प्रासंगक बनाती है।

समसामयिक युग में ज्यादा चर्चित विषय क्षेत्र है - पारिस्थितिकवाद, भूमंडलीकरण, नारीवाद, आदिवासी जीवन संदर्भ आदि। इन तीनों से संबंधित विचारों को समाहित करने वाला प्रस्तुत शोध प्रबंध सामयिक संदर्भ में सार्थक सिद्ध होगा, यही उम्मीद है। यह निस्संदेह है कि हमारे अस्तित्व और जीवन के हर क्षेत्र से जुड़े पारिस्थितिकी का अध्ययन सामयिक ही नहीं, स्थायी महत्व का विषय है।